राष्ट्रीय चेतना और इक्कीसवीं सदी के हिन्दी नाटक

शोध सार

राष्ट्रवाद अपने आप में एक गंभीर और महत्त्वपूर्ण विषय है। भारत में राष्ट्रवाद को लेकर कई प्रश्नों को उठाया जाता है। उन प्रश्नों में महत्त्वपूर्ण है- राष्ट्रवाद की उत्पत्ति। इस प्रश्न पर विद्वान दो वर्गों में विभाजीत हैं। प्रथम वर्ग के विद्वानों का मानना है कि राष्ट्रवाद की उत्पत्ति पश्चिम के देशों खासकर अमेरिका और फ्रांस आदि में हुआ तथा बाद में यह भारत में आया। इनका मानना था कि राष्ट्रवाद के लिए एक भाषा, एक संस्कृति का होना अनिवार्य है। जबकि भारत बहु-भाषी तथा बहु-संस्कृति वाला देश है। इसके साथ ही सम्पूर्ण भारत आपस में जुड़ा हुआ भी नहीं था। अर्थात् यहाँ के लोग एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश की यात्रा नहीं करते थे। वहीं द्वितीय वर्ग के विद्वानों का मानना है कि भारत में राष्ट्रवाद की सुदृढ़य परंपरा रही है। इन्होंने स्विट्ज़रलैंड का उदाहरण देकर, एक भाषा की अनिवार्यता को अस्वीकार कर दिया। भारत की संस्कृतियों के अन्तःसंबंधित बताते हुए बहु-संस्कृति के तर्क को भी अस्वीकार कर दिया। भारत में धार्मिक यात्राएं प्राचीन काल से ही होते आया है। उदाहरणस्वरूप इक्कावन शक्तिपीठों, द्वादश ज्योतिर्लिंगों आदि की यात्रा को लिया जा सकता है। इन सब के साथ-साथ भारत को एक सूत्र में बांधने का राजनैतिक तथा धार्मिक प्रयास होता रहा है।

राष्ट्रवाद का आधुनिक अर्थ जिसमें अपने ही राष्ट्र को सर्वप्रथम और सर्वोपरि माना जाता है; यह प्रवृत्ति भारत में शायद कभी नहीं रही है। इस प्रवृत्ति के स्थान पर भारत में अपने राष्ट्र की उन्नति, सुरक्षा, कल्याण आदि विचार और प्रयास की प्रवृत्ति अधिक रही है और इस प्रकार की प्रवृत्ति भारत में वैदिक काल से आज तक मिलती है। इस प्रकार के विचार और प्रयास ही **राष्ट्रीय चेतना** को अधिक समीचीन बनाता है। इस प्रवृत्ति की राष्ट्रीय चेतना को इक्कीसवीं सदी के नाटकों में खोजने का प्रयास इस शोध आलेख में किया गया है।

बीज शब्द

अनेकरूपता, अवधारणा, उपादेयता, आकांक्षित, सलांग, औपनिवेशिक, भिक्षावृति, इन्स्टिंगक्ट,

मूल आलेख

राष्ट्रीय चेतना शब्द में राष्ट्रीय और चेतना दो शब्दों का मेल है। इसमें राष्ट्रीय शब्द राष्ट्र में 'ईय' प्रत्यय लगाने से बना है। 'प्रामाणिक हिन्दी कोश' सं. रामचन्द्र वर्मा के अनुसार 'राष्ट्र' शब्द का अर्थ है - (क) राज्य, (ख) देश, (ग) एक राज्य में बसनेवाला समस्त जन-समूह। इस प्रकार राष्ट्रीयता का अर्थ हुआ (क) राष्ट्र संबंधी (ख) देश संबंधी (ग) अपने राष्ट्र की एकता, महत्ता और उन्नति आदि से संबंध रखनेवाला।[1] वहीं इसी पुस्तक के अनुसार चेतना शब्द का

अर्थ है - (क) बुद्धि (ख) शोध करने कि वृत्ति या शक्ति।[2] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि राष्ट्रीय चेतना का अर्थ है- 'अपने राष्ट्र की एकता, महत्ता और उन्नति में लगी हुई बुद्धि, वृत्ति या शक्ति।'

राष्ट्रीयता की अवधारणा, स्वरूप तथा उपादेयता को लेकर विद्वानों में मत-भिन्नता है। इसका कारण काल, स्थान और परिस्थिति को माना जा सकता है। भारत के संदर्भ में इसकी भौगोलिक और सांस्कृतिक अनेकरूपता के कारण यह और जटिल हो जाता है। ऐसे में राष्ट्रीयता को एकसूत्री परिभाषा में बांधना एक कठिन कार्य हो जाता है। परंतु इसे समझने के लिए विभिन्न विद्वानों के विचारों की सहायता ली जा सकती है। स्मिथ के अनुसार "राष्ट्रवाद अपने को एक वास्तविक अथवा आकांक्षित राष्ट्र का संघटन मानने वाले किसी सामाजिक समूह के सदस्यों का स्वायत्तता, संलाग तथा वैयक्तिकता की उपलब्धि तथा संपोषण के लिए वैचारिक आंदोलन है।"[3] वहीं महर्षि अरविन्द ने राष्ट्रीयता को राष्ट्र निर्माण की महाशक्ति की रूप में परिभाषित करते हुए कहा कि "राष्ट्रवाद महाशक्ति है, जो राष्ट्र का निर्माण करनेवाली कोटि-कोटि जनता की सामूहिक शक्तियों का समष्टि रूप है। यह एक धर्म है। यह अजर-अमर है। राष्ट्रीयता को दबाया नहीं जा सकता" [4] इन्होंने इसे मनुष्य की लघु से दीर्घ बनाने की सहज प्रवृत्ति के रूप में देखा और इसका लक्ष्य विश्व राज्य की स्थापना माना और कहा कि "मनुष्य की सहज प्रवृत्ति लघु से वृहत इकाई बनाने की होती है। परिवार, ग्राम, नगर, राज्य, साम्राज्य आदि इसी लघु से वृहत इकाई के निर्माण की प्रक्रिया के घोतक हैं।" [5] राष्ट्रीयता का लक्ष्य निर्धारित करते हुए वे कहते हैं कि "अंतिम राष्ट्रवाद का परिणाम विश्व राज्य की स्थापना होना चाहिये, जो स्वतंत्र राष्ट्रों का महासंघ होगा।"[6] महर्षि इसे व्यापक फलक में देखने के साथ-साथ इसमें मानवीय मूल्यों के समायोजन को महत्वपूर्ण मानते थे। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने मानवतावाद को राष्ट्रवाद से उच्च स्थान दिया है। वे अपनी पुस्तक **'नेशनलिज़्म' (NATIONALISM)** के अध्याय **'नेशनलिज़्म इन इंडिया'** में लिखते हैं कि "आई हैव नों हेज़िटेशन इन सेइंग दैट दोज हू आर गिफ्टेड विथ द मॉरल पावर ऑफ लव एण्ड विज़न ऑफ स्पिरिचुअल यूनिटी, हू हैव द लीस्ट फीलिंग ऑफ एन्मिटी अगैन्स्ट एलीअंस, एण्ड द सिम्पैथेटिक इन्साइट टू प्लेस देम्सेल्वस देन द पोज़िशन ऑफ अदर्स विल बी द फिटेस्ट टू टेक दिअर पर्मानेन्ट प्लेस इन द ऐज दैट इज लाइंग बीफोर अस, एण्ड दोज़ हू आर कॉनस्टैनटली डेवलपिंग दिअर इन्स्टिंगक्ट ऑफ फाइट एण्ड इंटोलरैंस ऑफ एलीअंस विल बी एलिमिनटेड। फॉर दिस इज द प्रॉब्लेम बीफॉर अस, एण्ड वी हैव टू प्रूव आवर ह्यूमैनिटी बाई सोलविंग इट थ्रू द हेल्प ऑफ आवर हाइर नेचर।"[7] प. नेहरु ने राष्ट्रवाद के नाम पर अतीत के अंध-अनुकरण का विरोध किया। परंतु जो जीवनोपयोगी है, जो क्रियाशील है; उसे वेहिचक आत्मसात भी किया। उन्होंने कहा था कि "राष्ट्रवाद मूलतः अतीत की उपलब्धियों, परंपराओं, तथा अनुभवों की

सामूहिक स्मृति है।"[8] इस संबंध में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति रघुनाथ प्रसाद रस्तोगी का विचार समीचीन है। उनका कहना था कि "राष्ट्रीयता उस भावना का नाम है जो देश के सभी निवासियों के हृदय में देशहित की अभिलाषा से व्यापात हो रही हो, जिसके सामने अन्य भावों की श्रेणी निम्न रहती है। देश ही सभी देशवासियों के प्रेम और भक्ति का विषय बन जाए, मतभेद, वर्णभेद तथा जातिभेद के होते हुए भी राष्ट्रीयता का श्रेष्ठ भाव देशव्यापी हो जाए तथा इतना बढ़ जाए कि उसके आगे अन्य भावों की श्रेणी निम्न हो जाए।"[9]

उपर्ययुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राष्ट्रीयता एक प्रकार की भावना है, जिसका झुकाव अपने देश या राष्ट्र के हित की ओर होता है। वहीं राष्ट्रीय चेतना अपने देश या राष्ट्र की उन्नति से जुड़ी भावना, बुद्धि या वृत्ति है। यह चेतना देशवासियों को कुल, वंश, जाति, संप्रदाय, धर्म, क्षेत्र आदि के संकुचित दायरे से ऊपर उठाकर देशहीत से जोड़ती है। यह देश की प्रगति को आधुनिक और वैज्ञानिक आयाम देने में भी सहायक हो सकता है। इस चेतना का भारत में विकास को लेकर विद्वानों के दो वर्ग हैं। एक वर्ग इस चेतना को वैदिक काल से चली आ रही धारा के रूप में व्याख्यायित कारता है। तो दूसरा वर्ग इसका विकास आधुनिक युग विशेषकर औपनिवेशिक काल से मानता है।

राष्ट्रीय चेतना देश, राष्ट्र या क्षेत्र (लघु या विस्तृत) की उन्नति या संवर्धन की विचाराधारा के रूप में हमें वैदिक काल से ही मिलता है। **अथर्ववेद** के पृथ्वी सूक्त में कहा गया है कि "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः"। यहाँ **'पृथिव्या'** शब्द का दो अर्थ लिया जा सकता है- एक सम्पूर्ण पृथ्वी या संसार तथा दूसरा राज्य। राज्य के संबंध में इस शब्द का प्रयोग कौटिल्य ने अपनी रचना **'अर्थशास्त्र'** के प्रथम अध्याय **विनायाधिकारिक प्रथम अधिकरण** के प्रथम श्लोक में इस प्रकार करते हैं-

ॐ नमः शुक्रबृहस्पतिभ्याम् । **पृथिव्या लाभे पालने च** यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्थापितानि प्रायशस्तानि सहृत्यैतमिदमर्थशास्त्रं कृतम् । तस्यायं प्रकरणाधिकरणसमुद्देशः । [10]

भारत की भूमि की महत्ता और पवित्रता को यहाँ जन्म लेने की लालसा के रूप में भागवतपुराण में निम्न श्लोक के द्वारा दिखाया गया है -

कदा वयं हि लपस्यामो जन्म भारत-भूतले।

कदा पुण्येन महता प्राप्यस्यामः परमं पदम्॥ [11]

कुछ इसी तरह माहाभारत के भीष्म पर्व में भी भारत में जन्म लेने के महत्व को दिखाया गया है। इसमें लिखा है कि

अत्र ते किर्तिष्यामि वर्ष भारत भारतम् ।

प्रियमिन्द्रस्य देवस्य मनोवैवास्ततस्य ।

अन्येषां च महाराजक्षत्रियारणां बलीयसाम ।

सर्वेषामेव राजेन्द्र प्रियं भारत भारतम् । [12]

विष्णुपुराण, गरुड़पुराण आदि में भी भारत भूमि की प्रशंसा या यहाँ जन्म लेने की तीव्र उत्कंठा मिलती है। रामायण में जन्म-भूमि को स्वर्ग से भी ऊपर स्थान देते हुए कहा गया है कि

मित्राणि धन धान्यानि प्रजानां सम्मतानिव।

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ॥ [13]

यह श्लोक दूसरे रूप में भी मिलता है। उक्त श्लोक का दूसरा रूप भी जन्मभूमि की सर्वोच्चता को ही स्थापित करता है। दूसरा श्लोक इस प्रकार है-

अपि स्वर्णमयी लङ्का न में लक्ष्मण रोचते।

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ॥

इस चेतन को वैदिक-पौराणिक काल के साहित्यों के साथ-साथ हम इसे आदिकाल की ऐतिहासिक घटनाओं में भी देख या अनुभूत कर सकते हैं। ईसा पूर्व दूसरी-तीसरी शताब्दी में भारत के एकीकरण के लिए चाणक्य और चन्द्रगुप्त के एकल प्रयास को राष्ट्रीय चेतना का द्योतक माना जा सकता है। यह चेतना मध्यकाल में थोड़ी शिथिल जरूर नजर आती है परंतु समाप्त नहीं होती है। इसे महाराणा प्रताप, शिवाजी तथा छत्रशाल बुंदेला के राज्य स्थापना, सामाजिक तथा राजनैतिक सुधारों आदि के प्रयासों में देखा जा सकता है। आगे इस चेतन को भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में 1857 की क्रांति, सशस्त्र विद्रोह, काँग्रेस में गरम-नरम दल के प्रयासों आदि में विकसित और संवर्धित होते देखा जा सकता है।

आज के युग में राष्ट्रीय चेतना [इसकी आधुनिक व्याख्या और इसका धर्म की ओर झुकाव या प्रतिद्वंदी की अनिवार्यता आदि जैसी अवधारणा से युक्त अर्थ सहित] का विकास उपनिवेश काल में दिखाई पड़ता है। भारत में ब्रिटिश राज्य की स्थापना की नींव जून 1757 के प्लासी युद्ध में सिराज-उद-दौला के हार के साथ ही रख दी गई थी। सन् 1764 ई. में बक्सर युद्ध जीत कर कंपनी ने इस पर मुहर लगा दिया। साम्राज्य स्थापना के बाद ब्रिटिश भारत में अपनी शासन व्यवस्था को बनाए रखने तथा निजी लाभ के लिए दमनकारी शासन, जातीय विभेद की नीति, भारतीय शिल्प कलाओं का नाश और आर्थिक शोषण आदि का सहारा लेने लगे। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की सफलता और लगातार बढ़ते शोषण की नीतियों ने भारतीयों को आत्मचिंतन के लिए मजबूर किया। भारतीयों ने अपनी पराधीनता और मुक्ति के कारणों को खोजने का

प्रयास किया। इन्हीं प्रयासों का परिणाम था- विद्रोह तथा जड़ हो चुकी भारतीय समाज के आधुनिकीकरण का प्रयास। इस कालखंड में भारतीय समाज में सुधार के जो प्रयास हुए, उनकी दो धाराएँ थीं। एक धारा पश्चिमी सभ्यता-संस्कृती से प्रभावित थी तो दूसरी धारा प्राचीन भारतीय संस्कृति से। प्रथम धार के महापुरुषों में राजाराम मोहन राय, महगोविंद रानाडे, ज्योतिबा फुले आदि प्रमुख हैं। द्वितीय धारा के प्रमुख महापुरुषों में दयानंद सरस्वती, विवेकानंद आदि हैं। इन महापुरुषों ने भारतीय समाज में सुधार के लिए कई संस्थाओं की स्थापना भी की। इस युग के महापुरुषों का ध्यान और प्रयास प्रायः भारतीय सामाजिक ढांचे में सुधार का रहा। इन सुधार के प्रयासों ने आम भारतीयों में जागृति पैदा की। इस कारण हम इस युग के सामाजिक सुधारों को आधुनिक युग की राष्ट्रीय चेतन का प्रस्थान बिंदु कह सकते हैं। परंतु इस भावना का फैलाव जन-जन तक होना अभी भी शेष था।

भारत में मध्यवर्ग का उदय ब्रिटिश उपनिवेश की स्थापना के बाद हुआ। यह मध्य वर्ग शिक्षित था और अंग्रेजी शासन में विश्वास रखता था। इसी विश्वास का परिणाम था सन् 1885 ई. में काँग्रेस की स्थापना। हालाँकि काँग्रेस की स्थापना एक रिटायर्ड अंग्रेज अधिकारी द्वारा किया गया था। परंतु इससे बहुत से भारतीय भी जुड़े थे। इनमें अधिकांशतः शिक्षक, डॉक्टर, वकील आदि थे। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, दादाभाई नौरोजी, महागोविंद रानाडे, बदरुद्दीन तैयब जी, गोपालकृष्ण गोखले आदि उदारवादी व्यक्तित्व के प्रमुख नेता थे। ये लोग अंग्रेजों को न्यायप्रिय मानते थे तथा सुधार के लिए आवेदनों या प्रार्थना-पत्रों को प्राथमिकता देते थे। यही कारण है कि इनकी आलोचना के लिए 'भिक्षावृत्ति' शब्द का प्रयोग किया गया। इन्हे सच्चे अर्थों में जनप्रतिनधि तो नहीं कहा जा सकता। फिर भी इन्होंने जन को सांप्रदायिकता और क्षेत्रीयता की भावना से ऊपर उठाने का प्रयास किया। इनके इन्ही कार्यों के कारण डॉ. पट्टाभि सितारमैय्या ने कहा था कि "उन्होंने राष्ट्रीयता के विशाल भवन की नींव के रूप में कार्य किया।"[14]

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक तथा बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशक की कुछ प्रमुख घटनाएं जैसे 1896-97 का भीषण आकाल, दिल्ली के दरबार का खुला अपव्यय, मुंबाई प्रांत में प्लेग का फैलाना और प्लेग कमिश्नर रेंड़ और सेना का अमानवीय व्यवहार, तिलक की गिरफ़्तारी, सन् 1904 ई. में रूस पर जापान की जीत, सन् 1905 ई. में बंगाल का विभाजन आदि ने भारतीयों में एक भारी असंतोष को पैदा कर दिया। इन घटनाओं से क्षुब्ध भारतीय राष्ट्रवादियों का एक वर्ग स्वराज्य को अपना लक्ष्य बनाया। ये अपनी मांगों को लेकर उग्र थे तथा इनकी नीतियाँ आक्रामक थीं। इस कारण इस राष्ट्रवाद को उग्रवादी या गरम विचारधार का राष्ट्रवाद कहा जाता है। इनमें प्रमुख थे - लाला लाजपत राय, बाल गंगाधर तिलक, विपिन चंद्र पाल, अरविन्द घोष, पं. मदन मोहन मालवीय आदि। लाला लाजपत राय ने स्वराज्य को लेकार कहा था कि "स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और उसे हम अपने बल से प्राप्त

करेंगे। हम उसे उपहार के रूप में नहीं चाहते हैं।" [15] यह वर्ग मुख्यतः भारतीय सांस्कृतिक पुनरुत्थान (हिन्दू धार्मिक पुनरुत्थान) से अधिक प्रभावित था। इन लोगों ने भारतीयों में देशप्रेम जगाने के लिए अशोक, चन्द्रगुप्त, महाराणा प्रताप, रानी लक्ष्मीबाई आदि चरित नायकों की वीरता, त्याग और बलिदान को किस्सों-कहानियों के रूप में जन-जन तक पहुंचाया। लोकमान्य तिलक ने महाराष्ट्र में इस नव चेतना के प्रसार के लिए गणेश उत्सव तथा छत्रपति शिवाजी महाराज उत्सव की शुरुआत की। उक्त दोनों उत्सव महाराष्ट्र में नवचेतना विकासित करने में मिल का पत्थर साबित हुआ। इनके इन प्रयासों ने लोगों में स्वाभिमान के साथ-साथ आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास को जगाया। इसे सन् 1905 ई. के बंग-भंग के बाद के स्वदेशी आंदोलन आदि में भी देखा जा सकता है। गरम या उग्र राष्ट्रवादियों ने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन से निम्न-मध्य वर्ग के लोगों, महिलाओं, युवाओं, विद्यार्थियों आदि को जोड़ा तथा सामाजिक-राजनैतिक आंदोलन के लिए एक नवीन राह का अन्वेषण किया।

महात्मा गांधी भारतीय राजनीति में सन् 1916-17 ई. से सक्रिय भूमिका में नजर आने लगते हैं। महात्मा गांधी भारत की केवल राजनैतिक स्वतंत्रता के पक्षधर नहीं थे। वे भारत का सामाजिक, आर्थिक तथा नैतिक उत्थान चाहते थे। स्वराज्य के संबंध में उनका मानना था कि "मेरा स्वराज्य तो गरीबों का स्वराज्य है। जीवन की आवश्यकताएँ नरेशों और धनिकों के साथ-साथ आपको भी मिलना चाहिये......स्वराज्य उस समय तक पूर्ण स्वराज्य नहीं है, जब तक आपकी जीवनोपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती।" [16] महात्मा गांधी के आगमन के साथ भारतीय राष्ट्रवाद में भी परिवर्तन आता है। इन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद को बहुत व्यापक, व्यावहारिक (यथार्थवादी) और क्रियात्मक बनाया। इन्होंने इसे कुल, जाति, संप्रदाय, धर्म, क्षेत्र आदि के बंधानों से बाहर निकाल कर एक विस्तृत आयाम प्रदान किया। इनके प्रयासों से भारत में राष्ट्रीय चेतना का प्रसार जन-जन तक हो पाया। गांधीजी ने स्वतंत्रता आंदोलन के कार्यक्रम में अहिंसा को आधार बनाया। इन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद में अहिंसा, धर्मनिरपेक्षता और नैतिकता को जोड़ा। इस तरह भारतीय राष्ट्रवाद सर्वांगीण और रचनात्मक राष्ट्रवाद बन गया।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में एक वर्ग जैसे को तैसा में विश्वास रखता था। यह वर्ग स्वतंत्रता आंदोलन में हिंसात्मक विद्रोह, सशस्त्र विद्रोह या अलोकप्रिय तथा भ्रष्ट अधिकारियों की राजनीतिक हत्या, सैनिक कार्यवाही आदि के प्रयोग में विश्वास रखता था। यह महात्मा गांधी के अहिंसात्मक राष्ट्रवाद के विपरीत था। खुदी राम बोस, रास बिहारी बोस, भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद, सुभाष चंद्र बोस आदि इसमें प्रमुख थे।

मैकडोनाल्ड ने भारतीय राष्ट्रवाद के लिए कहा था कि "भारतीय राष्ट्रवाद राजनीतिक संघों के आंदोलन के रूप में कुछ अधिक रहा है। यह एक ऐतिहासिक परंपरा का पुनरुत्थान है। लोगों की आत्मा की मुक्ति है।"[17]

राष्ट्रीय चेतना के विकास में **(क) सांस्कृतिक समरूपता, (ख) भाषाई एकरूपता, (ग) शिक्षा, (घ) महापुरुषों की जीवनी** आदि सहायक होते हैं, जबकि **(क) जातिवाद (ख) क्षेत्रवाद (ग) भाषावाद (घ) आर्थिक विषमता (ङ) सांप्रदायिकता (च) शैक्षणिक स्तर (छ) संकुचित विचार धाराएं** आदि बाधक है। हिन्दी नाट्य परंपरा में इन्हीं सहायक तथा बाधक तत्त्वों पर रचनाएं मिलती हैं। वर्तमान सदी (इक्कीसवीं) में राष्ट्रीय चेतना पर रचित प्रमुख हिन्दी नाटकों का विषय अधिकांशतः इन्हीं तत्त्वों के आस-पास मिलता है। वर्तमान सदी में महापुरुषों की जीवनी, कार्य, त्याग और बलिदान के साथ-साथ उनके विचारों को मुख्य विषय बनाकर भी नाटक लिखे गए हैं। इस तरह की नाट्य रचनाएं जन में आत्मविश्वास, त्याग और बलिदान के भावना बढ़ाने या उत्पन्न करने के साथ उन्हें राष्ट्र-निर्माण के लिए भी प्रेरित करती हैं। देश-प्रेम और त्याग के संबंध को रामनरेश त्रिपाठी ने निम्न शब्दों में विश्लेषित किया है-

देश-प्रेम वह पुण्य-क्षेत्र है,

अमल असीम, त्याग से विलसित।

आत्मा के विकास से जिसमें,

मनुष्यता होती है विकसित। [18]

उक्त विषय से संबंधित नाटकों में कुछ प्रमुख नाटक हैं - **'गांधी को फांसी दो' (गिरिराज किशोर), 'कैद में बापू' (राजेन्द्र त्यागी), 'धरती आबा' (ऋषिकेश सुलभ) तथा 'झांसी की रानी' (जयवर्धन)** आदि। इसमें प्रथम नाटक **'गांधी को फांसी दो'** गिरिराज किशोर के द्वारा लिखित है। यह नाटक आज की कुछ गंभीर समस्याओं जैसे- एक विचारधारा या व्यक्ति से स्वयं को बांधकर उसका मशीन की तरह अनुसरण करने की प्रवृति, स्वराज्य की संदिग्ध अवधारणा आदि विषय पर केंद्रित है। इस नाटक के दृश्य - 2 में गांधी जी कहते है - "मशीन आई तो आदमी का कद छोटा हुआ है। उसकी आत्म-निर्भरता घटी है, परनिर्भरता बढ़ी है। परनिर्भरता क्या इंसान को आज़ादी दे सकती है?"[19] इसी नाटक के दृश्य चार में गांधी जी स्वराज्य के संबंध में कहते हैं कि "स्वराज का मतलब है पहले अपने अंदर की आज़ादी"[20] इसी में वे आगे कहते हैं कि "स्वराज्य यानी अपने ऊपर आपना अनुशासन, यह अहिंसा और सच्चाई के जरिए की संभव है। राष्ट्रीयता के नाम पर देश की आज़ादी के लिए हिंसा को प्राथमिकता देने का अर्थ है अपनी आज़ादी के सपने को क्षत-विक्षत कर देना। आधुनिक सभ्यता हिंसा का दर्शन है।"[21] **'कैद में बापू'** (राजेन्द्र त्यागी) नाटक कल्पना के सहारे पूर्व-दीप्ति शैली में लिखित है। इसमें गांधी शब्द तथा गांधीवादी विचार धारा का प्रयोग निजी स्वार्थ पूर्ति के लिए कैसे हो रहा है? - को दिखाया गया है। साथ ही यह नाटक भारत की कुंठित और स्वार्थी हो रहे राजनीति का भी चित्रण करता है। वहीं **'धरती आबा'** (हृषिकेश सुलभ) में **भगवान विरसा मुंडा** का अपने

लोगों, अपनी सभ्यता-संस्कृति, अपने क्षेत्र और सामाज के उत्थान के लिए किए गए संघर्ष, त्याग, बलिदान आदि को व्यापक और प्रभावी ढंग से उभारा गया है। **'झांसी की रानी'** (जयवर्धन) में रानी लक्ष्मीबाई का अपने राज्य के लिए दिए गए बलिदान को दिखाया गया है। इस नाटक में रानी का अंग्रेजों के साथ सीधे संघर्ष को चित्रित किया गया है। यह नाटक रानी के बलिदान के साथ उनकी साहस और वीरता को दर्शाता है। रानी की साहास और वीरता से प्रभावित होकर आंग्रेज अधिकारी जनरल ह्यूज ने कहा था कि “1857 के विद्रोहियों में एकमात्र मर्द लक्ष्मीबाई थी।”

उक्त नाटकों के अतिरिक्त **विद्रोही, वैतरणी के पार (जि जे हरिजीत), सुमन और सना, ऑपरेशन क्लाउडबर्स्ट (नादिरा ज़हीर बब्बर)** कुछ प्रमुख हिन्दी नाटक हैं। इन नाटकों का कथ्य वर्तमान राष्ट्रीय समस्याएं हैं। इनमें मुख्यतय **आतंकवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद** आदि समस्याओं को चित्रित किया गया है। **'विद्रोही'** (जि जे हरिजीत) नाटक का कथानक का विषय भारत के उत्तर-पूर्व राज्यों में बढ़ता आतंकवाद तथा क्षेत्रवाद है। इस नाटक में एक ही परिवार की दो पीढ़ियों की कथा-व्यथा के माध्यम से उत्तर-पूर्व के भारत की समस्यों को चित्रित किया गया है। इस नाटक का मुख्य पात्र बाबू सिंह है जो आज़ाद हिन्द फौज का सिपाही अर्जुन सिंह और सुचित्रा (मणिपुरी महिला) का बेटा है। अर्जुन सिंह शादी के कुछ समय बाद ही अपने फौज के साथ वापस लौट जाता है। बाबू सिंह परित्यक्त स्त्री की संतान होने की सामाजिक अवहेलना के साथ बडा होता है। यह अवहेलना उसके अंदर एक अवसाद को जन्म देता है। वह राजनैतिक दुष्चक्र में पढ़कर विद्रोही बन जाता है। नाटक के कथानक का यह अंश इसे भारत और इसके पूर्वोत्तर राज्यों के बीच के संबंधों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति प्रतीति होता है।

अर्जुन सिंह : हमारा बेटा! मेरा बेटा! ...... लेकिन यह विद्रोही कैसे बन गया? आजाद हिन्द फौज के सिपाही का बेटा विद्रोही!

सुचित्रा : और यह विद्रोही बना, तो तुम ही जिम्मेदार हो। यदि तुम हमारे साथ होते, तो क्या यह विद्रोही बनता! ...... तुम्हारी उपेक्षा ने आज इसे विद्रोही बना दिया है।[22]

'वैतरणी के पार' (जि जे हरिजीत) इस नाटक का कथानक पौराणिकता के रस्सी से बुनी गई है। परंतु इसके धागे आज के समाज, धर्म, राजनीति और शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों से बनी है। इस नाटक का केन्द्रीय कथ्य जीवात्मा आठ के कथन में निहित है जो इस प्रकार है- “आप देख नहीं रहे हैं? कश्मीर जल रहा है, असम जल रहा है, मणिपुर जल रहा है, गिरिजन-हरिजन, गाँव-कसबे जल रहे हैं, नदियाँ जल रहीं हैं, भाषाएँ जल रही हैं, प्रांतों की सीमाएँ जल रही हैं। इस दावानल में देशप्रेम झुलस रहा है। सांप्रदायिकता, प्रादेशिकता डंक मार रही है। बिहार में चरमपंथी तांडव कर रहे हैं। सांसद और विधायक बिक रहे हैं। सर्वत्र स्वार्थ

और भ्रष्टाचार का बोलबाला है। ...... वे लोग भूल गए हैं कि हमने किस तरह से इस देश को आज़ाद कराया था। अब वे उसी आज़ादी का दुरुपयोग कर रहे हैं। एकता गायब हो रही है। और आज़ादी भी गायब होने वाली है।"[23]

'सुमन और साना' (नादिरा ज़हीर बब्बर) शीर्षक नाटक में उन लोगों की कहानी को चित्रित किया गया है जो सम्प्रदायिकता आग में जलकर बच तो गए पर अपने ही देश में शरणार्थी बन गए। इस नाटक में जम्मू तथा अहमदाबाद के दो रिलीफ़ कैम्प में रह रहे भिन्न संप्रदाय के लोगों के जीवन को दिखाया गया है। दोनों रिलीफ़ कैम्पों के लोगों का जीवन स्तर लगभग एक समान है। उनके चारों ओर दुःख, दर्द, पीड़ा के साथ घोर अंधेरा व्याप्त है। भ्रष्टाचार ने उनके जीवन को और मुश्किल बना दिया है। इस घुप अंधेरे में लेखिका को नई पीढ़ी से उम्मीद है। **'ऑपरेशन क्लाउडबर्स्ट'** शीर्षक नाटक की रचना भी नादिराजी ने ही किया है। यह नाटक में पूर्वोत्तर भारत में व्याप्त आंतकवाद के कारणों, लोगों की दुविधाओं, अंतर्द्वंद्वों और प्रश्नों को एक व्यापक फलक पर लाने का प्रयास करता है। इसके साथ ही इस नाटक में उक्त स्थिति में सुधार हेतु भारतीय सेना के निःस्वार्थ समर्पण को भी चित्रित किया गया है।

निष्कर्ष

आज भी अधिकांश लोग राष्ट्रवाद की उत्पत्ति पश्चिम के देशों से ही मानते है। कुछ हद तक यह सत्य भी है। परंतु राष्ट्र (एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र तथा जन के अर्थ में) कल्याण आदि की भावना के रूप में यह दीर्घ काल (वैदिक काल) से ही भारत में व्याप्त था। राष्ट्रवाद को यदि राष्ट्रीय चेतना के रूप में देखने समझने का प्रयास किया जाए तो इसे आसानी से समझ जा सकता है।

ऊपर की विवेचना में हमने पाया कि इस इक्कीसवीं सदी के हिन्दी नाट्य-लेखन परंपरा में राष्ट्रीय चेतना के सहायक और बाधक दोनों तत्वों को लेकर नाटक लिखे जा रहे हैं। हिन्दी में नाटक कम लिखे जाते हैं। इसमें भी राष्ट्रीय चेतना को लेकर और भी काम नाटक मिलते है। लेकिन जो भी हिन्दी नाटक इसे लेकर लिखा गए हैं, वे युग की चुनौतियों के सापेक्ष हैं। इधर लोगों में राष्ट्र के प्रति प्रेम और जागरूकता भी बढ़ी है और अभी इस सदी का दो दशक ही बीता है। अतः इस विषय की ओर बढ़ने के लिए हिन्दी नाटक के पास पर्याप्त समय, संसाधन और कारण हैं।

[1] प्रामाणिक हिन्दी शब्दकोश, सं रामचन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कुटीर, हाथीगली, बनारस - वि. सं 2008, पृष्ठ संख्या - १०६५ (1065)

[2] वही, पृष्ठ संख्या- ४१७ (417)

[3] भारतीय राष्ट्रवाद स्वरूप और विकास संपादक डॉ सत्येन्द्र त्रिपाठी, डॉ कृष्णदात्त द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1990, पृष्ठ सं २

[4] वही, संपादकीय 'क'

[5] वही, संपादकीय 'क'

[6] वही, संपादकीय 'क'

[7] NATIONALISM, RABINDRANATH TAGORE, FiNGERPRINT! CLASSICS, 2021, page No 90

[8] भारतीय राष्ट्रवाद स्वरूप और विकास, सं डॉ सत्येन्द्र त्रिपाती, डॉ कृष्णदत्त द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1990, पृष्ठ सं २६

[9] भारतीय राष्ट्रवाद स्वरूप और विकास संपादक डॉ सत्येन्द्र त्रिपाठी, डॉ कृष्णदात्त द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1990, प्राक्कथन

[10] अर्थशास्त्र, कौटिल्य अनुवाद श्री भारतीय योगी, संस्कृति संस्थान - १९९३ (1993), पृष्ठ संख्या - १७ (17)

[11] भागवत पुराण

[12] महाभारत भीष्म पर्व

[13] रामायण, सं- हिन्दी प्रचार सभा मद्रास, प्रकाशन वर्ष- 1930

[14] भारतीय राष्ट्रवाद स्वरूप और विकास संपादक डॉ सत्येन्द्र त्रिपाठी, डॉ कृष्णदात्त द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1990,

[15] भारतीय राष्ट्रवाद स्वरूप और विकास संपादक डॉ सत्येन्द्र त्रिपाठी, डॉ कृष्णदात्त द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1990,

[16] भारतीय राष्ट्रवाद स्वरूप और विकास, सं- डॉ सत्येन्द्र त्रिपाठी डॉ कृष्णदत्त द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1990, पृष्ठ सं. 48

[17] वही, पृष्ठ सं. 52

[18] हिन्दी भाषा एवं साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास, सरस्वती पांडे, गोविंद पांडेय, अभिव्यक्ति प्रकाशन 2014, पृष्ठ 189

[19] गांधी को फांसी दो, गिरिराज किशोर, राजपाल एंड संज 2009, पृष्ठ सं- 21

[20] वही, दृश्य-4, पृष्ठ सं- 32

[21] वही, दृश्य-4, पृष्ठ सं- 32

[22] विद्रोही, जि जे हरिजीत, सार्थक प्रकाशन 2002, अंक -7

[23] वैतरणी के पार , जि जे हरिजीत, भुवन भारती प्रकाशन 2007